करोड़ शासन-सत्ता एवं सुविधा-सम्पन्न वर्ग को बहुत बड़ी मात्रा में जनता के खजाने से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सरकारी लूट की खुली छूट दे दी जाती है।

परिणामस्वरूप स्वतंत्रता के 60 वर्षों में 95 करोड़ के हिस्से में, व्यवस्था की प्रतिकूलता के कारण, कुल राष्ट्रीय आय का केवल 20 प्रतिशत हिस्सा ही प्राप्त हो सका, जबकि 1 करोड़ सुविधा सम्पन्न अभिजात्य वर्ग को कुल राष्ट्रीय आय का 80 प्रतिशत हिस्सा; संवैधानिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की अनुकूलता के कारण; मुहैय्या करा दिया गया है।

भारत की राष्ट्रीयता राजनीति में से नहीं जन्मी है। राजनीति को संस्कृति से अधिक महत्व कभी नहीं दिया गया। हमारी संस्कृति में, परम्पराओं में, मान्यताओं में दिशा-निर्देशक दूसरे होते थे और शासक दूसरे।

व्यवस्था परिवर्तन - प्राथमिकताओं का पुनरावलोकन

"चरित्र-सुधार" से व्यवस्था का सुधार नहीं होता। "व्यवस्था सुधार" द्वारा ही चरित्र या सामाजिक कार्य-संस्कृति में बदलाव और सुधार लाया जा सकता है।

व्यक्तिगत स्तर पर पारिवारिक परिवेश में; जहां कर्तव्य ही हमारी कार्य-संस्कृति है और देना या बांटना ही हमारे प्यार और खुशियों का आधार; हम सभी 100 करोड़ देशवासी पूरी तरह चरित्रवान एवं कर्तव्यपरायण हैं। व्यक्ति-परिष्कार या चरित्र निर्माण, परिवार की संस्था में हमारे पालन-पोषण के 15 वर्षों के प्रारम्भिक काल में ही अपने आप स्वाभाविक रूप में संस्कारित हो जाता है।

परन्तु यदि राष्ट्र के स्तर पर सोचना है, तो हमें सर्वप्रथम 95% आम जनता को श्रेष्ठ, महत्वपूर्ण एवं कर्तव्यपरायण मानना होगा और 1% राष्ट्रनायकों, शासन संचालकों, "विशिष्ठ" एवं "चरित्रवान लोगों" के लिये कर्तव्य-उत्तरदायित्व की बाध्यता स्वीकार करनी होगी। संवैधानिक स्तर पर अभिजात्य वर्ग- शासक - नौकरशाही - प्रतिनिधि वर्ग के लिये कर्तव्य-उत्तरदायित्व की बाध्यता स्वीकार करके, उसकी कार्य-संस्कृति के लिये पात्रता एवं योग्यता निर्धारित करनी होगी।

व्यवस्था परिवर्तन - मूल सिद्धान्त

आर्थिक विषमता ही अपराध, आतंक की जड़ है। व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकता पूर्ति किये बिना, समाज के पास अपराधी को दण्ड देने का कोई नैतिक आधार नहीं है।

प्राकृतिक सनातन व्यवस्था

1. व्यक्ति या प्राणी अपनी इच्छा से पैदा नहीं होता।
2. जो भी प्राणी पैदा होता है, वह भौतिक है और जीने के लिये उसे भौतिक आधार चाहिये।
3. कोई भी प्राणी, पैदाइश के साथ भौतिक आधार न तो साथ लेकर आता है और न ही मृत्यु के बाद भौतिक आधार साथ लेकर जा सकता है।
4. प्रकृति में 84 लाख योनियां हैं और मानव योनि उनमें से एक योनि है। प्रकृति प्रत्येक प्राणी की न्यूनतम आवश्यकता पूर्ति के साधनों की प्राणी की उत्पत्ति के साथ ही इन्तजाम कर देती है।
5. प्रकृति और उसके विधान शाश्वत-सनातन हैं।
6. प्रकृति कर्म या कर्तव्य आधारित है।
7. कर्तव्य और अधिकार सिक्के की तरह प्रकृति के दो पहलू हैं।
   1. कर्तव्य - जो मूल हैं। जब कर्म या क्रिया (Action) नैतिक-मूल्य आधारित हों तो कर्तव्य कहलाते हैं।
   2. अधिकार - जो कर्म-कर्तव्य का अर्जित परिणाम हैं। अतः अधिकार कर्म या कर्तव्य का प्रतिफल हैं।
8. प्रकृति में मूल अधिकार का अस्तित्व नहीं है। केवल कर्म-कर्तव्य मूल है और अधिकार उसकी प्रतिक्रिया मात्र हैं। कर्तव्य का अर्जित परिणाम है अधिकार।
9. सभी 84 लाख योनियां प्रकृति के शाश्वत नियमों के विधान "कर्तव्य-आधारित व्यवस्था" से संचालित हैं, जिन्हें मानव समाज में सनातन माना जाता है।